भारत में सिक्के का इतिहास

डॉ. मनीष कुमार सिंह*

पुरापाषाण–युग में जब मानव शिकारी जीवन व्यतीत कर रहा था, तब विनिमय की कोई आवश्यकता नहीं थी। लेकिन बाद में जब अधिशेष उत्पादन हुआ तब विनिमय की आवश्यकता हुई। आरम्भ में 'वस्तु विनिमय' (Barter System) की पद्धति प्रचलित हुई। परन्तु 'वस्तु विनिमय तभी सफल हो सकता है जब खरीदने व बेचने वाले दोनों व्यक्तियों को वस्तुओं की आवश्यकता हो। इसलिए किसी ऐसी वस्तु की आवश्यकता प्रतीत हुई जिसे सब स्वीकार करें। इस प्रकार मुद्राओं का आविष्कार हुआ।

प्राक्मौर्यकाल में (600 ई0पू0–300 ई0पू0 तक) आहत सिक्कों के अतिरिक्त बौद्ध ग्रन्थों से निष्क, सुवर्ण, कांस, पाद, मासक, काकणिक और कार्षापण नामक सिक्कों के प्रयुक्त होने के साक्ष्य मिलते हैं हालांकि इनके मूल्य सर्वत्र असमान थे।

मौर्यकाल में (लगभग 322 ई0 पू0 – 200 ई0 पू0 तक) सम्पूर्ण साम्राज्य के अन्दर आहत सिक्कों का प्रयोग किया गया। अर्थशास्त्र से कुछ प्रमुख मुद्राओं के नाम इस प्रकार मिलते हैं–

(i) सुवर्ण – सोने का (ii) कार्षापण या पण या धरण–चाँदी का
(iii) मासक – ताँबे का (iv) काकणी – ताँबे का

इनमें पण सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। व्यापार पण के माध्यम से होता था। सरकारी कर्मचारियों का वेतन भी पणों में दिया जाता था।

मुद्रा –निर्माण एकमात्र सरकारी टकसाल में होता था, लेकिन यदि कोई व्यक्ति चाहे तो कुछ शुल्क अदा कर, अपनी धातु ले जाकर सरकारी टकसाल में अपने लिए मुद्राएँ बनवा सकता था। टकसाल के अधिकारी 'सौवर्णिक' एवं 'मुद्राध्यक्ष' थे।

मौर्योत्तर काल (लगभग 200 ई0 पू0 – 300 ई0) में विदेशियों के कारण सिक्कों के स्वरूप एवं प्रसार में कुछ मौलिकता एवं वैज्ञानिकता का समावेश होता है। उत्तर–पश्चिमी भारत पर बैक्ट्रिया के हिन्द–यूनानी शासकों ने जब अधिकार कर लिया तो उन्होंने सोने के सिक्के चलाए। बैक्ट्रियाई शासकों द्वारा जारी किए गए सिक्कों में शासक की आति और नाम खुदा होता था। इन सिक्कों से प्रेरित हो भारतीय शासक भी सिक्का–लेख वाले सिक्के चलाने लगे। 'इन आकृतियों एवं अन्य चिह्नों जैसे देवताओं के चित्रों में कलात्मकता का वह स्तर है, जो भारतीय

***इतिहास विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।**

सिक्कों ने अबतक प्राप्त नहीं किया था।''

ताम्र एवं रजत की कितनी ही मुद्राएँ जिनके भार एवं प्रकार में असमानता थी, भारतीय राजतंत्र एवं गणतंत्र के शासकों ने चलाए। पांचाल के मित्र शासक, मालव, यौधेय आदि गणराज्य के शासकों ने अपने सिक्के जारी किए। दक्षिण भारत में सातवाहनों ने, सीसे, राँगे एवं गिलट की मुद्राएँ जारी की। गुजरात के मालवा तथा पश्चिमी दक्कन के शकों ने चाँदी के सिक्के जारी किए। ये सभी सिक्के मौर्योत्तर कालीन भारत में व्यापारिक गतिविधियों में तीव्रता को दर्शाते हैं।

गुप्तकाल (300 ई0 से 550 ई0 तक) में 'गुप्तों ने अपने पूर्ववर्ती अधिकारियों से कहीं अधिक स्वर्ण मुद्राएँ जारी की। 'गुप्त स्वर्ण मुद्राओं में सोने का अंश कुषाणों स्वर्ण मुद्राओं में पाए गए सोने के अंश से कम है। गुप्त स्वर्ण मुद्राओं में सोने का अंश बड़ी तेजी से घटता गया खासकर गुप्त शासन के अंत में यह और घट गया।' 'गुप्त' राजाओं की स्वर्ण मुद्राएँ (दीनार) मूलतः कुशन स्तर की थीं, किन्तु पाँचवी शताब्दी के मध्य में उनका भार 144 ग्रेन तक बढ़ गया और वे पुनः भारत स्तर के ताम्र कार्षापण के बराबर हो गयीं।' समुद्रगुप्त के सिक्कों का वजन कुषाणों के समान 118 से 12.3 ग्रेन तक है जिसमें कनिंघम के अनुसार 107 ग्रेन सोना और 16 ग्रेन खोट होता था। स्कन्दगुप्त के समय सिक्कों का वजन 144 से 146 ग्रेन तक हो गया, लेकिन इसमें सोने की मात्रा केवल 70 ग्रेन रह गई। ऐसा गुप्त साम्राज्य की बिगड़ती आर्थिक स्थिति के कारण हुआ। ये स्वर्ण सिक्के अधिकतर भूमि की खरीद–बिक्री में प्रयुक्त होते थे।

'गुप्त राजाओं के रजत के सिक्के (रूपक) जो उज्जयिनी के शकों के आधार पर थे, भार में 32–36 ग्रेन तक थे।' सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त द्वितीय ने चाँदी के सिक्के चलाए। कुमारगुप्त प्रथम के दो प्रकार, स्कन्दगुप्त के दो प्रकार तथा बन्धुगुप्त के भी चाँदी के सिक्के मिले हैं।

'गुप्त राजाओं के ताम्र सिक्कों की भार–व्यवस्था अनिश्चित है। उसके भार की पुष्टि 3.3 से 101 ग्रेन तक होती है।' विदिशा से ताँबे के 6 सिक्के मिले हैं जो परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार रामगुप्त के हैं। कुमारगुप्त प्रथम एवं उसके बाद तांबे के सिक्के न के बराबर हैं। गुप्तों ने कुषाणों के समान ताँबे के सिक्के अधिक मात्रा में जारी नहीं किए। इसका कारण प्रो0 आर0 एस0 शर्मा के अनुसार ''आत्मनिर्भर आर्थिक इकाईयों के विकास के कारण ग्रामीण किसानों ने मुद्रा के व्यवहार को बहुत कम कर दिया।'' आम जनता दैनिक वस्तुओं की खरीद–बिक्री सोने के सिक्के से कर नहीं सकती थी और ताँबे के सिक्के कम मात्रा में प्रचलित थे। अतएवं आमजन फाहियान के अनुसार 'कौड़ियों' का उपयोग करते थे।'' ऐसा प्रतीत होता है कि मुद्रा–प्रणाली उस प्रकार जन–जीवन का अभिन्न अंग न थी जैसा कि कुषाणकालीन एवं मौर्योत्तर ताँबे की मुद्राओं की बहुलता से लक्षित होती है।''

'कुषाण एवं गुप्तकाल में सिक्के 7.78 से लेकर 9.33 ग्राम तक के हैं लेकिन इस काल के सिक्के 4.2 ग्राम से अधिक नहीं है।' सिक्कों की कमी का

कारण विदेश व्यापार की कमी थी जिससे कि बाहर भेजी जानेवाली वस्तुओं के विनिमय से सोना–चाँदी कम आने लगा। सामंती व्यवस्था में राज्य कर्मचारियों को वेतन मुद्रा के स्थान पर भूमि के रूप में दिया जाने लगा जिससे सिक्के जारी करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। अरब यात्रियों के वृत्तांत से पता चलता है कि व्यापार वस्तु–विनिमय के माध्यम से होता था। भारतीय साहित्य से पता चलता है कि अंतर्राज्यीय व्यापार में भी व्यापार का माध्यम वस्तु–विनिमय ही था।'

पालों एवं राष्ट्रकूटों के सिक्कों की पहचान संदिग्ध है। केवल देवपाल के 6 सोने के सिक्के मिले है। प्रतीहार राजाओं के सिक्के मिलते हैं, 'पर उनकी संख्या कम है और अधिकांशतः नवीं सदी के बाद के हैं।' यह सत्य है कि 'गधैया सिक्के'' जिनपर अग्नि–वेदिका का चित्रण है, राजस्थान और उसके पड़ोस के इलाके में पाए गए हैं, लेकिन जिन सिक्कों पर देवनागरी में अभिलेख हैं, उनकी तिथि दसवीं–ग्यारहवीं सदियों से पहले निर्धारित नहीं की जा सकती। गधैया मुख्यतः देश के उत्तर–पश्चिमी भाग तक ही सीमित थे। जिस युग में उत्तर एवं दक्षिण में सिक्कों की कमी थी, उसी समय देश में दो ऐसी छोटी जगहें थीं जहाँ चार सौ वर्षों तक सिक्कों की अविरल परंपरा कायम रही। ये क्षेत्र थे–कश्मीर (छठी से दसवीं शताब्दी के बीच) एवं पंजाब तथा अफगानिस्तान के अंतर्गत शाहियों के राज्य।' साधारण लेन–देन और व्यापार कौड़ियों के माध्यम से होता था, जिन्हें प्रतीहार अभिलेखों में 'कपर्दक' कहा गया है। विदेशी यात्रियों ने भी दैनिक लेन–देन में कौड़ियों के उपयोग का उल्लेख किया है।

तुर्की शासन की स्थापना के पूर्व दो शताब्दियों में चंदेलों, कलचुरियों, गाहड़वालों, तोमरों आदि के राज्यों में स्वर्णमुद्रा पुनर्जीवित हो उठीं। डाहल के कलचुरिवंश के शासक गांगेयदेव विक्रमादित्य (लगभग 1015–41 ई0) ने गुप्त सम्राटों के सिक्कों के अनुरूप सिक्के चलाये। जेजाकभुक्ति के चंदेल शासकों ने गांगेयदेव के सिक्कों की नकल की। इनके पृष्ठभाग में बैठी हुई लक्ष्मी की आकृति बनी है। चाहमान शासकों ने सांड और घुड़सवार के चाँदी के सिक्के चलाये।

चालुक्य शासकों ने जो सोने के सिक्के चलाये वे 'पद्मटंक' कहलाते हैं। उनपर सूअर की आकृति है। दक्षिण भारत में सर्वाधिक प्रचलन वराह नाम के सिक्के का था क्योंकि इसपर सूअर की आकृति बनी होती थी। यूरोपीय लेखकों ने वराह को 'पगोड़ा' लिखा है। चोल स्वर्णमुद्रा 'कलंजु' नाम से जानी जाती है। एक अन्य दक्षिण भारतीय स्वर्ण सिक्का 'काशु' भी प्रचलित था।

'आहत सिक्कों' की प्राप्ति (500 ई0 पू0 से 100 ई0 पू0 तक) से ज्ञात होता है कि 'उत्तर भारत में वाणिज्य व्यापार का आरंभ हो गया और वस्तु–विनिमय के स्थान पर मुद्रा के माध्यम से विनिमय होता था। वणिक एवं स्वर्णकार शासकों की आज्ञा से सिक्के चलाते थे। इससे पता चलता है कि शिल्प एवं वाणिज्य का अर्थव्यवस्था में अपना स्थान हो गया था।' 'सिक्कों को देखकर ऐसा लगता है कि सातवाहनों और कुषाणों के समय इस देश का वाणिज्य–व्यापार उत्कर्ष पर था।

कुछ सातवाहन सिक्कों पर जहाज की आकृति मिलती है, जिससे सामुद्रिक व्यापार होने का बोध होता है। ई0 पू0 200 से 300 ई0 सन् के बीच नगरों ने भी अपने–अपने सिक्के चलाए। 'सिक्के बतलाते हैं कि मौर्योत्तर काल और गुप्तकाल के प्रारंभ तक व्यापार जोर से चलता रहा और नगरों की समृद्धि बनी रही।'

गुप्तोत्तर काल में सिक्कों का अभाव हो जाता है। 650 ई0 सन् से लगभग 1000 ई0 सन् तक सोने के सिक्के लुप्तप्राय हो जाते हैं। यह अवस्था उत्तर एवं दक्षिण भारत दोनों में पाई जाती है। कश्मीर, पंजाब और बंगाल के कुछ राजवंशों को छोड़ सिक्के न के बराबर हैं। गुर्जर–प्रतीहारों के कुछ सिक्के हैं पर ये अधिकांशतः 10–11वीं सदी के प्रतीत होते हैं। 7वीं सदी के पश्चात् पश्चिमी उत्तर–प्रदेश, राजस्थान और गुजरात से गधैया पैसे मिले हैं पर इस पर लिखे लेख इसे 11–14 वीं सदी के बताते हैं। 'अतः 11वीं सदी के पहले सिक्के का अभाव इस बात का द्योतक है कि व्यापार में कमी आ गई थी और नगर पतनावस्था में थे।'

राजनीतिक इतिहास के निर्माण में भी मुद्राशास्त्र का महत्व है। उदाहरण के लिए यूनान और रोम के इतिहासकारों ने केवल चार या पाँच हिंद–यूनानी शासकों का उल्लेख किया है लेकिन उनके सिक्के के आधार पर इनके राज्यकाल का पूरा इतिहास लिखना संभव हो सका है। पांचाल के मित्र शासकों और मालव तथा यौधेय आदि गणराज्यों का पूरा इतिहास उनके सिक्कों के आधार पर ही लिखा गया है। सिक्के यदि बड़ी संख्या में एक स्थान पर मिले तो यह अनुमान लगाया जाता है कि सिक्कों की प्राप्ति–स्थान उस शासक के राज्य का भाग था। यदि सिक्कों पर कोई तिथि उत्कीर्ण है तो उसका राज्यकाल पता चलता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के चाँदी के सिक्कों से यह अनुमान लगाया गया है कि उसने शकों को पराजित किया होगा क्योंकि उस समय चाँदी के सिक्के केवल पश्चिमी भारत में ही चलते थे।

सांस्कृतिक एवं धार्मिक इतिहास के निर्माण में भी सिक्कों की उपयोगिता है। गुप्तकालीन सिक्के बहुत कलात्मक हैं। इन सिक्कों से तत्कालीन जनता की साहित्य और कला में रूचि की झलक दृष्टिगोचर होती है। सिक्कों से राजाओं और जन–साधारण के रीति–रिवाज और धार्मिक विश्वासों पर भी प्रकाश पड़ता है। समुद्रगुप्त को वीणावादक रूप में सिक्के पर प्रस्तुत किया गया है। सिक्कों से ज्ञात होता है कि मध्य–एशियाई होते हुए भी कुषाण शिव अथवा विष्णु की पूजा करते थे। गधैया पैसों पर अग्निवेदिका है, जिससे पता चलता है कि जरथुष्ट्र पूजा का प्रभाव आदि मध्यकाल में भारत पर पड़ रहा था।

सन्दर्भ :–

1. रामशरण शर्मा, 'प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास।
2. डी0 एन0 झा एवं कृष्णमोहन श्रीमाली, 'प्राचीन भारत का इतिहास।
3. डा0 विमलचन्द्र पाण्डेय, 'प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास।
4. ओमप्रकाश, 'प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास।
5. एम0 एच0 गोपाल, मौर्यन पब्लिक फाइनेंस